मनोप्रति

मन का प्रतिबिंब

संचय सिंह

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Sanchay Singh 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-925-1

Cover Design: Shubham Verma
Typesetting: Sagar

First Edition: October 2025

मनोप्रति

“मन की ओर यात्रा,

स्मृतियों और स्वप्नों के गलियारों में भटकता एक यात्री।”

मन…

कभी शांत झील, कभी उफनती नदी।

कभी सूने वन में खोया स्वर, कभी वसंत की पहली बयार।

मनोप्रति उस यात्रा का नाम है, जहाँ हर शब्द एक दर्पण है

— जिसमें प्रेम के रंग, प्रकृति की खुशबू और पुनर्मिलन की धुन धीरे-धीरे उभरती हैं।

यह पुस्तक केवल पन्नों का संग्रह नहीं,

बल्कि उन भावनाओं का साक्षी है जो

दिल की गहराइयों से उठकर शब्दों में ढल गईं।

हर कविता, हर पंक्ति,

एक निमंत्रण है —

अपने भीतर झाँकने का,

अपने ‘मन’ से मिलने का।

भूमिका

मन… एक अनंत आकाश, जिसमें भावनाओं के असंख्य तारे चमकते हैं।

कभी यह आकाश प्रेम के गुलाबी रंग में रंग जाता है, कभी स्मृतियों की हल्की धुंध से ढक जाता है, और कभी पुनर्मिलन की सुनहरी किरण से उज्ज्वल हो उठता है।

“मनोप्रति” इसी आकाश का प्रतिबिंब है—मन के उस रूप का, जिसे शब्दों में पिरोना आसान नहीं, फिर भी आवश्यक है।

यह पुस्तक केवल कविताओं का संग्रह नहीं, बल्कि एक यात्रा है—लेखक के मन से पाठक के मन तक की।

इन पन्नों में आपको ऋतुओं की खुशबू मिलेगी, **विरह** की खामोशी सुनाई देगी और प्रेम की नमी महसूस होगी।

हर कविता एक पुल है, जो अनुभव और अभिव्यक्ति के बीच फैला है।

इस रचना में प्रेम, प्रकृति और पुनर्मिलन जैसे विषय एक-दूसरे में घुल-मिलकर एक ऐसी भाव-धारा बनाते हैं, जो कभी धीमे बहते झरने की तरह सुकून देती है, तो कभी लहरों की तरह हृदय को गहराई तक हिला जाती है।

यदि इस यात्रा में आपको अपने मन का कोई अंश, कोई स्मृति, या कोई अधूरी चाह फिर से मिल जाए—तो समझिए कि **“मनोप्रति ”** ने अपना उद्देश्य पा लिया है।

कृतज्ञता

किसी भी रचना की यात्रा केवल लेखक के शब्दों की नहीं होती—यह उन सभी भावनाओं, संबंधों और प्रेरणाओं की साझी यात्रा होती है, जो उसे जन्म देती हैं।

"मनोप्रति " के पन्नों में जो कुछ भी है, वह मेरे अकेले का नहीं, बल्कि उन सभी का है जिन्होंने इस सफ़र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरा साथ दिया।

सबसे पहले, मैं अपनी माँ का आभारी हूँ, जिन्होंने न केवल मेरा हौसला बढ़ाया बल्कि कठिन से कठिन समय में भी मेरा विश्वास थामे रखा। उनकी स्नेहिल प्रेरणा इस पुस्तक की नींव है।

मेरे मित्रों और पाठकों का धन्यवाद, जिनके सुझाव, सराहना और कभी-कभी की गई आलोचना ने मेरी लेखनी को और संवारा।

प्रेम, प्रकृति और पुनर्मिलन—इन विषयों की प्रेरणा मुझे जीवन के हर अनुभव और स्मृति से मिली। इसके लिए मैं हर उस क्षण का आभार मानता हूँ, जिसने मेरे मन में कविता की कोई चिंगारी जलाई।

यदि इस पुस्तक की कोई भी पंक्ति आपके हृदय में एक हल्की-सी लहर जगा सके, तो यह मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

धन्यवाद

संचय सिंह

अनुक्रमाणिका

1. मन का प्रतिबिंब 1
2. सफ़र के नए मोड़ 3
3. आईना और मैं 6
4. जो कहा नहीं गया 7
5. नींद से पहले का सच 8
6. पुनर्मिलन 10
7. भीतर का बवंडर..12
8. मन के मंथन में 14
9. जो चला गया , जो आएगा , और जो अभी है..15
10. भ्रम की छाया 17
11. मैं कौन हूँ (भाग १) 19
12. मैं कौन हूँ (भाग २) 21
13. मौन की भाषा 23
14. मन का द्वंद्व..25
15. मैं स्वयं के विरोध में हूँ..27
16. स्वयं की खोज 29
17. एक अकेली नाव 31
18. जीवन 32
19. कविता क्यों लिखता हूँ मैं?..33

मन का प्रतिबिंब

मन…
एक अनदेखा सागर है,
जिसकी लहरें
कभी बाहर की दुनिया को छूती हैं,
तो कभी भीतर की गहराइयों में लौट जाती हैं।

प्रतिबिंब…
सिर्फ एक छवि नहीं,
बल्कि वह संवाद है
जो आत्मा अपने आप से करती है।

जब झील का पानी स्थिर होता है,
तभी आकाश उसमें उतर पाता है;
वैसे ही,
जब मन शांत होता है,
तभी सत्य उसमें दिखाई देता है।

हर प्रतिबिंब में
हमारा चेहरा नहीं,
हमारे प्रश्न तैरते हैं—
कौन हूँ मैं?
कहाँ से आया हूँ?
और किस ओर जा रहा हूँ?

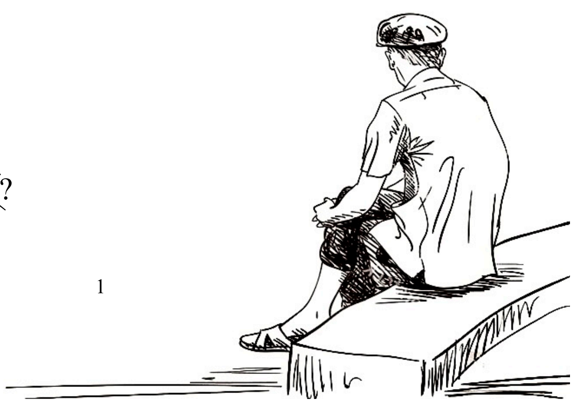

शायद…
मन का प्रतिबिंब ही वह द्वार है,
जहाँ बाहर की दुनिया
और भीतर का ब्रह्मांड
एक-दूसरे को पहचानते हैं।

सफ़र के नए मोड़

राह वही थी, पर नक्शा बदल गया,
पैरों के नीचे ज़मीन ने एक नया सवाल रख दिया।
जो दिशा अब तक तय समझी थी,
उस पर समय ने हल्की-सी रेखा खींच दी—
मानो कह रहा हो, "यहाँ से देख,
दुनिया उतनी ही तेरी है, जितनी तू सोच सकता है।"

मोड़ पर खड़ा मैं,
पीछे की धूल और आगे की धुंध—
दोनों में अपना चेहरा खोज रहा हूँ।
कभी लगता, यह ठहराव है,
कभी लगता, यही तो असली चलना है।

रास्ते के किनारे खड़े पेड़ों ने
मेरे कान में कुछ फुसफुसाया—
शायद यह कि हर पत्ता,
अपने गिरने से पहले
एक आख़िरी नृत्य करता है,
और हर शाख़ जानती है
कि खोना भी एक किस्म का बढ़ना है।

मैंने देखा, हवा बदल चुकी थी,
पर उसमें एक पुराना स्पर्श छुपा था।
जैसे नए मोड़ पर भी
पुरानी कहानियाँ अपनी परछाईं डाल देती हैं।
हम सोचते हैं हम नए हैं,
पर असल में, हम अपनी जड़ों को
एक नए आकाश से जोड़ रहे होते हैं।

कदम बढ़ाना आसान था,
पर अपने भीतर की आवाज़ पर भरोसा करना कठिन।
क्योंकि यह मोड़ पूछता है—
"क्या तू वही है जो तू सोचता है,
या बस वह जो रास्तों ने बना दिया?"

और तब समझ आया,
सफ़र सिर्फ़ मंज़िल का नाम नहीं,
यह उन मोड़ों का भी हिस्सा है,
जहाँ हम अपने पुराने उत्तर छोड़कर
नए प्रश्न अपनाते हैं।

हर नया मोड़ एक अदृश्य पुल है—
जहाँ से गुजरते हुए हम
थोड़े और अनजाने,
थोड़े और अपने बन जाते हैं।

क्योंकि सफ़र का असली जादू
मंज़िल पर पहुँचने में नहीं,
बल्कि उन क्षणों में है
जब हम मोड़ पर रुककर सोचते हैं—
“मैं कौन था?”
“और अब कौन हूँ?”

आईना और मैं

आईना और मैं — एक सवाल, एक जवाब,
एक सच, एक नक़ाब।
कभी मैं उसमें खुद को ढूँढता हूँ,
कभी उससे खुद को छुपाता हूँ।

आईना और मैं — दो चुप साथ चलने वाले,
वो सच्चा दिखने वाला, मैं सच से डरने वाला।
हर सुबह जब आमना-सामना होता है,
तो लगता है — कोई एक ज़रूर झूठा है।

कभी बेख़ौफ़ दिखाता मेरी थकान को,
कभी चुपचाप पढ़ लेता मेरे बगावत के निशान को।
हर सुबह मेरी आँखों में झाँककर कहता —
"क्या आज भी तू वही है, जो कल था?"

मैं उससे पूछता, "क्यों रोज़ टोकता है मुझे?"
वो कहता, "क्यों रोज़ बदलता है तू?"
मैं कहता, "कभी थक जाता हूँ दुनिया से,"
वो कहता, "तो फिर क्यों पहनता है चेहरा मुस्कान का झूठा?"

कभी लगता, आईना मैं हूँ,
और जो सामने है, वो एक मुखौटा है।
कभी सोचता, शायद मैं ही नक़ाब हूँ,
और आईना मेरा सच

जो कहा नहीं गया

जो कहा नहीं गया, वो मन के कोने में सोता है,
हर शब्द अधूरा लगता है, हर भाव कहीं खोता है।
होंठ थरथराते रहते हैं, पर चुप्पी गहराती जाती है,
जो कहना था तुमसे दिल से, वो बात वहीं रह जाती है।

नज़रों ने कई बार कहा, पर तुमने शायद सुना नहीं,
दिल की ज़ुबां बेआवाज़ थी, कोई अर्थ मिला नहीं।
हवाओं में लिपटा एक सन्नाटा, मेरे मन का गीत बना,
कहने को तो बहुत कुछ था, पर कहने का वक़्त न मिला।

हर मुस्कान के पीछे छुपा, एक अनकहा सा दर्द रहा,
हर मुलाक़ात के बाद भी, कुछ कहने को शेष रहा।
ना शिकायत, ना अफ़सोस है, बस एक कसक सी उठती है,
कभी यूँ ही तन्हाई में, वो अधूरी बात सिसकती है।

लफ़्ज़ों से जो न बंध सके, वो ही तो रूह की बात थी,
जो बात कहीं नहीं गई , वही तो सबसे खास थी।
कभी तुम भी सोचो शायद, उस खामोशी का क्या अर्थ था,
जब में अंतर्मन में चिंखा , वो ही तो असली स्वर था।

नींद से पहले का सच

दिन भर की भागदौड़ में,
जब थक कर चुप हो जाती है रूह,
और तन बिस्तर से लिपटता है,
तब शुरू होती है — नींद से पहले की सच्चाई।

चेहरे पर मुस्कान भले हो दिनभर,
पर रात कहती है — कितना रोए हो तुम भीतर।
जो बात किसी से कह न सके,
वो हर शब्द बन कर पलकों पे टिकते हैं।

कितने सवाल जो दबा दिए थे दिन में,
वो एक-एक कर के आते हैं गिनने —
कि क्या पाया, क्या खोया,
किसे चाहा, किससे बोझिल हो गया दिल।

नींद से पहले, आईना नहीं होता सामने,
पर आत्मा खुद को देखती है पूरी ईमानदारी से।
सच, जिसे हम दिन में छिपा लेते हैं,
रात उसे धीरे से खोल देती है।

कभी मां की याद, कभी अधूरी चाहत,
कभी कोई सपना जो अधूरा रह गया।
सब दस्तक देते हैं बारी-बारी,
नींद से पहले का सच — बड़ा भारी।

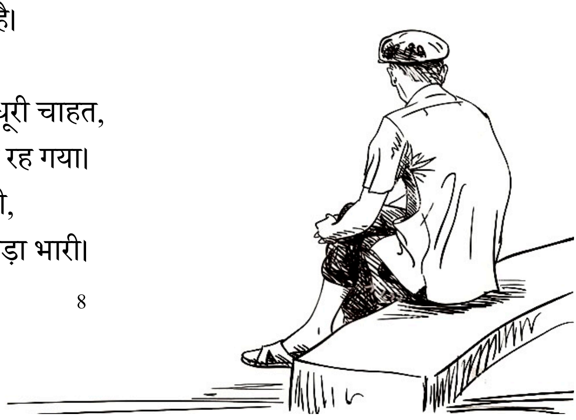

नींद से पहले का सच,
ना किताबों में मिलता है, ना आईनों में।
ये वो संवाद है, जो आत्मा खुद से करती है —
टूटे सपनों से, झूठे अपनापन से,
और कभी-कभी खुद से भी माफ़ी मांगती है।

पुनर्मिलन

बीत गए थे सावन कितने,
बिना तुम्हारे जीवन सूना।
मन के सूने प्रांगण में बस,
यादें थीं, और कोई ना।

संध्या की हर शांति मुझे,
तेरी चुप्पी सी लगती थी।
हर पत्ता जब हिलता था,
तेरी आहट सी जगती थी।

तुम लौटे एक प्राची बनकर,
भीगी नज़रों में संजीवनी।
हवा में फिर से गीत गूंजे,
फूटी मन की वीणा ध्वनि।

नयन मिले तो शब्द थमे,
धड़कन में एक मौन कथा थी।
कोई नहीं था पास हमारे,
फिर भी पूरी सृष्टि सजी थी।

तेरे हाथों का स्पर्श मिला,
जैसे फिर से जनम हुआ हो।
जो अधूरी थी मन की पूजा,
आज पूर्ण चरणों में सजा हो।

अब ना कोई दूरी रहे,
ना बातों में कोई संकोच।
पुनर्मिलन का यह क्षण अमर है,
जैसे मिल जाए साक्षात ओज।

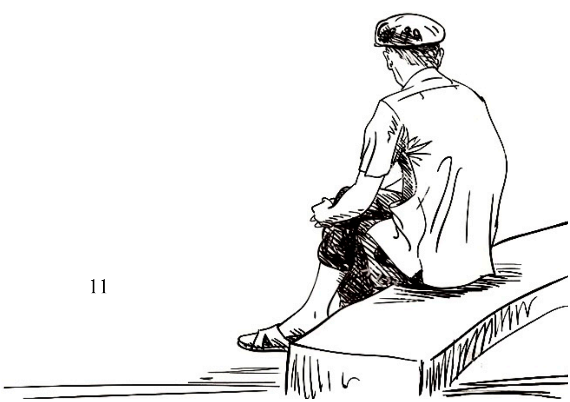

भीतर का बवंडर

भीतर इक तूफान बसा है,
शब्द नहीं, बस भाव धरा है।
हर सांस में कांपता जीवन,
जैसे कुछ अनकहा कहा है।

मन का कोना कोना टूटा,
फिर भी सबकुछ जोड़ा मैंने।
सपनों को बिखरते देखा,
पर उम्मीद को न छोड़ा मैंने।

भीतर जो है, बाहर नहीं,
जैसे छांव बिना कोई पेड़ खड़ा।
सब कहें — “तुम ठीक हो न?”
और मन बोले — “सबकुछ गड़बड़ है।”

चाहत थी बस थोड़ा समझा जाऊँ,
बिना कहे कोई पढ़ ले आंखें।
पर यहां हर चेहरा नकाब में है,
सच कहने से भी डरती सांसें।

कभी शांति का दीप जलाऊं,
तो हवा आकर बुझा दे।
कभी सच्चाई से नजर मिलाऊं,
तो आईना नजरें चुरा ले।

भीतर का बवंडर बोल नहीं पाता,
पर हर दिन एक गीत रचता है।
जो सुन ले उसकी धड़कन को,
वही असली साज़ समझता है।

मन के मंथन में

मन के मंथन में जब उतरता हूँ,
शब्द नहीं, संवेदनाओं से डरता हूँ।
हर विचार जैसे लहर बन उठता है,
चुपचाप भीतर कुछ कहता है।

कभी आशा की रेखाएँ खिंचती हैं,
तो कभी संशय की घटाएँ घिरती हैं।
इस गहरे सागर में, मैं अकेला नाविक,
हर प्रश्न का बनता हूँ खुद ही आलोचक।

मन के मंथन में अमृत भी है,
और छिपा कहीं हलाहल भी है।
बस विवेक की मशाल जलाए रखता हूँ,
हर भाव को सत्य से छुए रखता हूँ।

मौन में भी संवाद खोजता हूँ,
छोटे-छोटे उत्तरों में ब्रह्मज्ञान बुनता हूँ।
यह जो मंथन है, यही मेरी साधना,
यही मेरा धर्म, यही मेरी आराधना।

मन के मंथन में जो मिला,
वो न स्वर्ण था, न ही कंचन मिला।
मिला तो बस खुद का सच्चा स्वरूप,
अंधेरे में भी चमकता रूप।

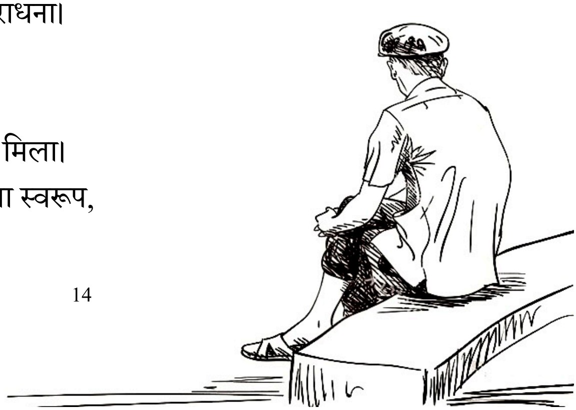

जो चला गया , जो आएगा , और जो अभी है

जो चला गया
वो एक धुंध था,
जिसमें हमने खुद को भी खो दिया था कई बार।
कभी हँसी के पीछे,
कभी आँसुओं की ओट में।
वो रिश्ते, वो राहें,
जो अब सिर्फ याद हैं
कभी चुभती, कभी सहला देती हैं।

जो आएगा
वो एक सपना है अभी,
एक कोरा पन्ना
जिस पर हम उम्मीदों की स्याही से
अपने कल को लिखने वाले हैं।
उसमें डर भी होगा,
पर उससे बड़ा विश्वास भी।
एक नया सूरज,
जो अब तक देखा नहीं…
लेकिन जिसकी किरणें मन में हैं।

और जो अभी है
वो सबसे सच्चा है,
एक नज़र, एक साँस,
एक ठहराव और एक उफान।
यही वक्त है
जिसमें तुम हो
जिसमें मैं हूँ।

यह पल ही जीवन है
बाकी सब सिर्फ धाराएँ हैं
जो गुज़रती रहती हैं।

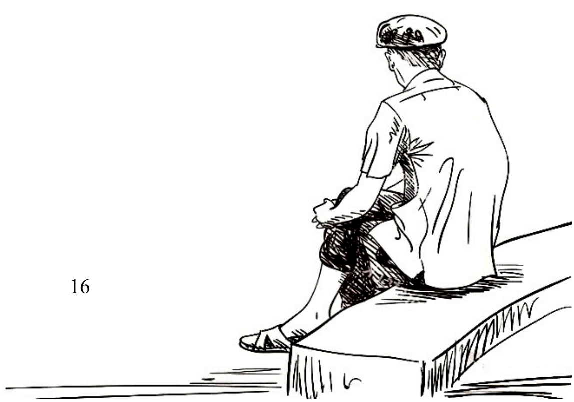

भ्रम की छाया

क्या हम वाक़ई में जी रहे हैं,
या बस एक सपना, जो कोई और देख रहा है?
हर दिन की सुबह, हर रात की चुप्पी,
क्या ये सच है, या कोई छवि है जो बहक रही है?

आईनों में जो चेहरा दिखता है,
क्या वो मेरा है, या कोई भ्रम रचता है?
स्पर्श भी होता है, पर एहसास खोखला,
क्या ये जीवन है, या बस विचारों का मेला ?

रिश्ते, रंग, भावनाओं के पुल,
कहीं ये सब किसी लेखक की कल्पना तो नहीं?
हम, तुम, ये धड़कती धरा,
क्या ये सब बस एक लीला है अनदेखे विधाता की?

शब्द बोलते हैं, पर अर्थ पीछे छिपा है,
हर उत्तर में एक और प्रश्न छिपा है।
चलते हैं राहों पर, मंज़िलें धुंधली हैं,
सच की तलाश में, पर कहानियाँ झूठी हैं।

पर यदि ये भ्रम ही है, तो क्यों ना इसे जी लें?
इस झूठ को भी सच मानकर क्यों ना पी लें?
क्योंकि चाहे सपना हो या सच्चाई,
जीवन की हर साँस में है कोई गहराई।

तो चलो, इस भ्रांति को भी अपनाएँ,
हर क्षण को प्रेम से सजाएँ।
क्योंकि हो सकता है, भ्रम ही हमारा सच हो,
और यही भ्रम, जीवन का सार हो।

मैं कौन हूँ (भाग १)

यह प्रश्न हज़ारो सालों से वेदांत, सूफ़ी , बौद्ध और अन्य दार्शनिक धराओं का केंद्रीय विषय रहा है;

मैं कौन हूँ? यह प्रश्न अनादि से चला आ रहा है,
हर सोच, हर साँस में कोई रहस्य छिपा रहा है।
ना केवल तन, ना केवल नाम,
मैं हूँ एक अज्ञात, अनंत धाम।

आँखें जो देखती हैं, क्या मैं वही हूँ?
या वह जो भीतर मौन बैठा है, वही मैं हूँ?
जो न बोले, न चीखे, न दिखे,
पर हर अनुभूति में चुपचाप टिके।

क्या मैं विचारों की लहर हूँ?
या आत्मा का मौन स्वर हूँ?
क्या मैं वह हूँ जो कल था?
या जो आने वाले कल में होगा?

कभी लगता मैं स्मृतियों का ढेर हूँ,
कभी अनुभवों की जलती हुई लौ का घेर हूँ।
कभी मन में उठते प्रश्नों का भार,
कभी हृदय में बसती एक मौन पुकार।

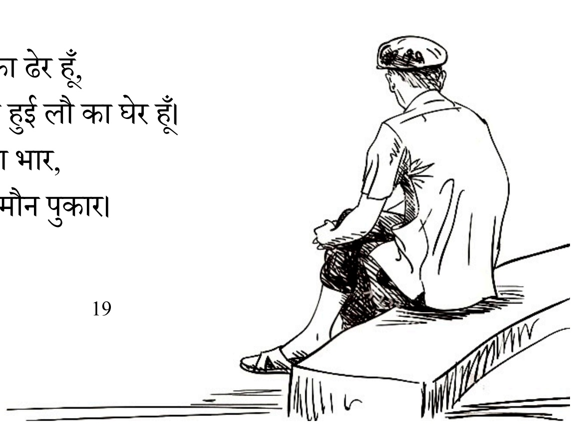

न मैं धरती, न मैं गगन,
न अग्नि, न जल, न कोई रचनात्मक भवन।
फिर भी इन सबमें मेरी ही छाया,
मैं ही धूप, मैं ही साया।

मैं नश्वर भी हूँ, और अमर भी,
मैं ज्ञान भी हूँ, और अज्ञान भी।
मैं प्रश्न भी हूँ, और उत्तर भी,
मैं राह भी हूँ, और मंज़िल भी।

मैं कौन हूँ (भाग २)

अब शब्द थम से गए हैं,
प्रश्न भी शांत हैं, और उत्तर भी अंधेरे में।
ना कोई पहचान बाकी है,
ना कोई झूठा भ्रम सहेजे हुए।

मैं था—एक विचार में,
मैं था—एक नाम में,
मैं था—एक रिश्ते में,
और फिर… मैं खो गया एक मौन कामना में।

मैं मंदिर में ढूँढा गया,
मस्जिद की अज़ान में भी खोजा गया,
कभी किताबों के पन्नों में उलझा,
कभी खुद के भीतर ही चुपचाप सुलगता रहा।

अब जाना है—मैं न तो देह हूँ,
न ही कोई मस्तिष्क की चालाकी।
मैं उस मौन की छाया हूँ,
जो सांसों के बीच बसा एक खाली पल है।

मैं वह हूँ जो सबमें है,
फिर भी किसी में भी नहीं।
मैं शून्य भी हूँ, और पूर्णता भी,
मैं खुद से भरा हुआ एक खाली पात्र भी।

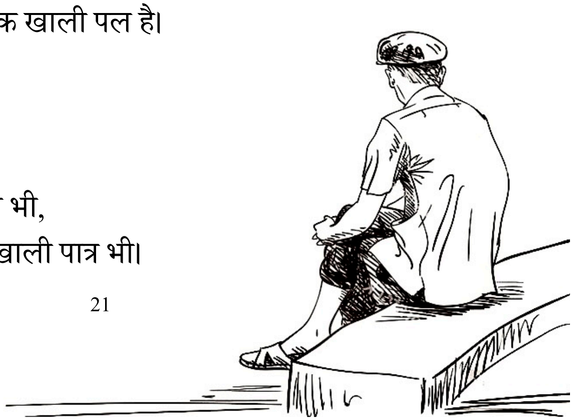

अब न कोई उत्तर चाहिए,
न और सवाल।
अब तो बस बैठना है
अपने ही साये के साथ—मौन, स्थिर, विशाल।

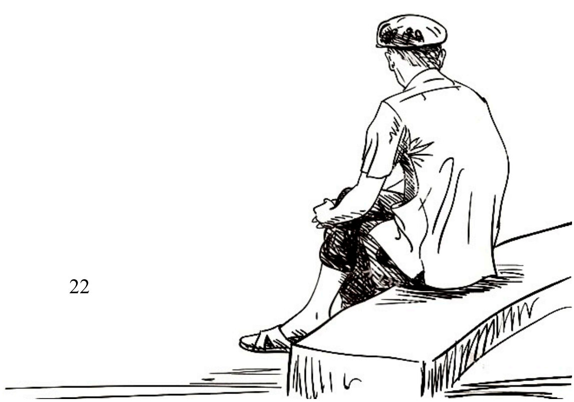

मौन की भाषा

मौन की भी होती है भाषा,
बिन बोले कह दे परिभाषा।
शब्द जहाँ थक हार जाते,
वहाँ मौन ही अर्थ बतलाते।

एक नज़र का ठहराव देखो,
हृदय में उठता भाव रेखो।
जो अधरों से छलक न पाए,
मौन उन्हें सहज अपनाए।

जब मन तूफ़ान से भर जाता है,
और कोई भी नहीं समझ पाता है।
तब मौन एक सहारा बनता है,
अंदर की पीड़ा सारा कहता है।

कभी यह मौन विद्रोह बन जाए,
तो सत्ता भी कांप उठ जाए।
कभी यह मौन समर्पण हो जाए,
तो प्रेम अमरत्व पा जाए।

यह मौन तिरंगा भी होता है,
यह मौन गीता का श्लोक होता है।
यह वही मौन है जो गाँधी ने ओढ़ा,
जिससे एक युग ने सत्य को जोड़ा।

तो मत कहो, मौन कुछ नहीं कहता,
यह वह संवाद है जो सबसे अधिक रहता।
शब्द तो छल कर सकते हैं कभी,
मौन में बसती है सच्चाई सभी।

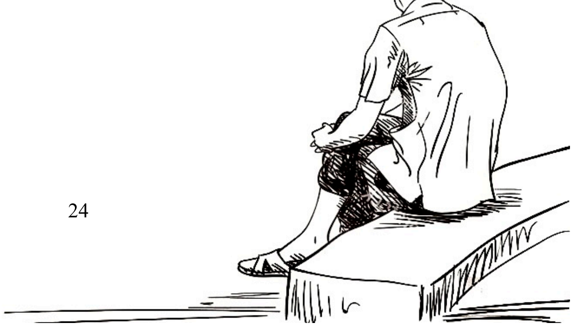

मन का द्वंद्व

मन से पूछा —
“क्यों इतना उलझा रहता है तू?”
मन बोला —
“क्योंकि मैं ही तो सुलझाता हूँ, जो छिपाता है तू।”

एक तरफ़ सपनों की रौशनी,
दूसरी तरफ़ डर की तन्हाई।
एक कहे — “बस उड़ चल”,
दूजा बोले — “गिरने की भी है सच्चाई।”

कभी लगता — सही मैं हूँ,
कभी लगता— बस भ्रम मै हूँ।
हर सोच पर एक सवाल खड़ा,
हर निर्णय पर खुद से झगड़ा।

खुशियों के भी दो रंग यहाँ,
एक बाहर, एक अंदर अनकहा।
बाहर मुस्कान, भीतर संकोच,
मन बना जैसे खोज।

कभी लगता — चुप रहना सही है,
कभी लगता— अब कहना ज़रूरी है।
हर शब्द से पहले मन काँपता है ,
कौन सा सच है, कौन सा धोखा है ?

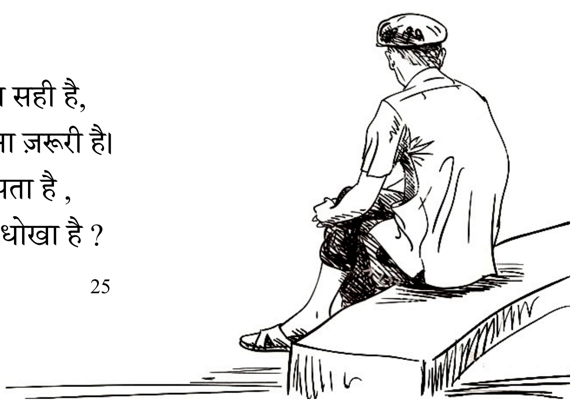

पर इस द्वंद्व में ही गहराई है ,
यही तो भीतर की सच्चाई है
जो लड़े खुद से, वो जीते जहान ,
जो समझे मन को, वही महान।

तो अब मैं मन से डरता नहीं,
उसके हर प्रश्न को गले लगाता हूँ।
क्योंकि जब अंदर सुलह होती है,
तभी तो असली शांति आती है।

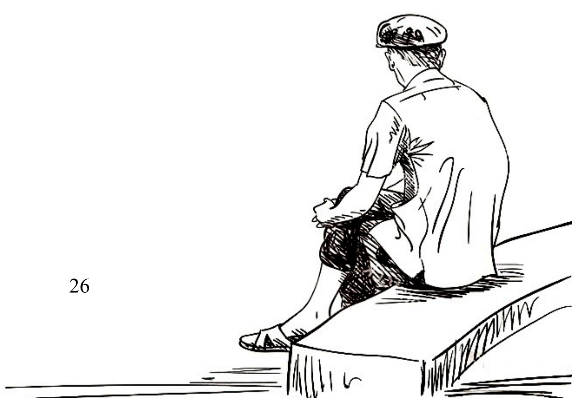

मैं स्वयं के विरोध में हूँ

मैं स्वयं के विरोध में हूँ,
खुद की परछाईं से डरता हूँ।
जो चेहरा आईने में दिखता है,
वो अब अनजाना लगता है।

कभी जो राह मैंने चुनी थी,
अब वो ही सवाल बन गई है।
ख्वाहिशों की भीड़ में उलझकर,
मेरी पहचान थक गई है।

मैं अपने ही स्वप्नों का कैदी,
अपने ही प्रश्नों का उत्तर नहीं।
हर रोज़ लड़ता हूँ खुद से,
पर जीत सका अब तक मगर नहीं।

मन की अदालत में हर दिन
एक नया मुक़दमा चलता है।
मैं ही दोषी, मैं ही फ़रियादी,
फैसला फिर भी टलता है।

कभी सोचा था उड़ जाऊँगा,
अब पंखों से शिक़ायत है।
मेरे खुद के बनाए पिंजरे में,
अब खुली हवा से नफ़रत है।

मैं स्वयं के विरोध में हूँ,
ये विरोध कोई द्वंद नहीं।
ये तो वो संवाद है भीतर,
जो मौन रहकर भी कुछ कहता है।

शायद इस विरोध से ही
कभी सच्चा मिलन होगा।
मैं जब खुद को समझ पाऊँगा,
तभी जीवन पूर्ण होगा।

स्वयं की खोज

मैं ढूँढ रहा था बाहर-संसार,
कभी पहाड़ों में, कभी नदियों के पार।
कभी अपनों की बातों में खो गया,
कभी अनजानों के साथ हो गया।

पर जो चाहिए था, वो पास था,
मेरे ही अंदर एक प्रकाश था।
जिसे न देखा, न पहचाना मैंने,
उस आत्मा को कब जाना मैंने?

कभी दूसरों की आँखों में देखा,
कभी उनकी बातों में खुद को परखा।
पर हर बार एक खालीपन मिला,
जैसे कोई अधूरा स्वप्न चला।

फिर एक दिन जब सब थम गया,
मन का तूफ़ान भी चुपचाप बह गया।
तभी भीतर एक दीप जला,
और आत्मा का द्वार खुला।

ना प्रश्न थे, ना उत्तर रहे,
बस एक मौन में सत्य सजे।
मैं था, मेरा "मैं" था,
वही जिसे जग ने कभी न जाना था।

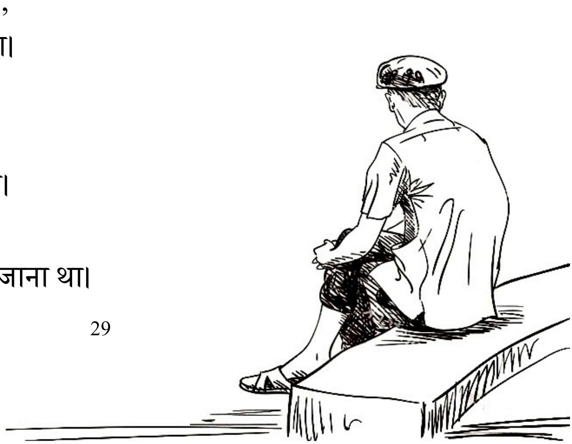

अब ना ज़रूरत है पहचान की,
ना दौड़ किसी सम्मान की।
स्वयं को जो पाया एक बार,
मुक्त हो गया हर झूठा व्यवहार।

एक अकेली नाव

लहरों पर तिरती हुई,
एक अकेली नाव चलती है,
दरिया के विस्तार में,
अपना रास्ता खुद ढूंढती है।

उसके दिल में एक नई आशा है,
उसके इरादों में एक नई दिशा है,
वह तैरती है, वह चलती है,
नई उम्मीदों की ओर बढ़ती है।

एक अकेली नाव, लेकिन साहसी,
दरिया की गहराइयों को छूने को आतुर,
वह अपने गंतव्य की ओर बढ़ती,
कोई डर नहीं, कोई चिंता नहीं।

लहरें ऊंची, तूफान आते,
लेकिन नाव डटी रहती है,
उसके अंदर एक जुनून है,
जीतने का, आगे बढ़ने का।

एक अकेली नाव, लेकिन मजबूत,
वह अपने रास्ते पर चलती है,
दरिया के दिल को छूने को,
वह अपनी कहानी खुद लिखती है।

जीवन

हर सुबह एक नया सवाल लेकर आती है,
हर रात कुछ अधूरी दास्तान कह जाती है।
सपनों की चादर तनी रहती है उम्मीदों से,
पर हकीकत अक्सर सिलवटें छोड़ जाती है।

कभी मंज़िल पास लगती है, तो कभी धुंध में खो जाती है,
हर मुस्कान के पीछे एक चुप्पी रोती है।
हम चलते हैं, गिरते हैं, फिर खुद को समेटते हैं,
अपनों से भी कभी खुद को छुपा लेते हैं।

सफ़र की राहें सीधी नहीं होतीं,
कई मोड़ ऐसे आते हैं जो हमें तोड़ देते हैं।
पर फिर भी दिल कहता है —
चल, थोड़ा और… शायद कोई किनारा मिल जाए।

हर जवाब अधूरा लगता है,
हर कोशिश में कुछ छूट सा जाता है।
जीवन की यह किताब कभी पूरी नहीं होती,
हर पन्ने पर कोई भाव, कोई आंसू बच जाता है।

शायद यही है इस जीवन का असली रूप —
एक अधूरापन जो हमें पूरा बनाता है।
एक तलाश जो कभी खत्म नहीं होती,
एक कहानी… जो हर अंत के बाद भी चलती जाती है।

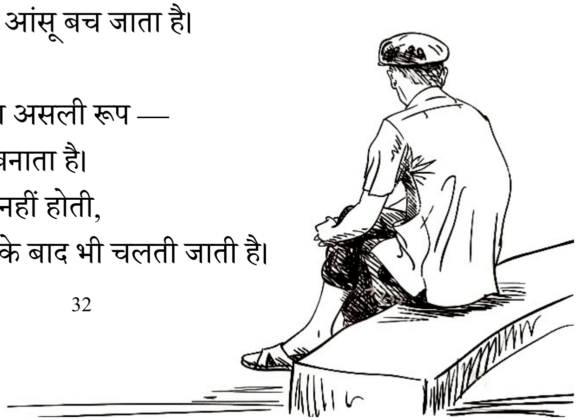

कविता क्यों लिखता हूँ मैं?

कविता क्यों लिखता हूँ मैं?
शायद इसलिए...
क्योंकि मैं अब तक खुद को नहीं समझ पाया।
और हर पंक्ति, हर छंद,
मेरे ही भीतर की तलाश है —
मैं कौन हूँ?

कभी लगता है —
मैं वो हूँ, जो बचपन की धूल में छूट गया,
या वो, जो नींदों में आता है,
पर सुबह तक भूल जाता हूँ।

मैं कविता लिखता हूँ
क्योंकि शब्दों के बीच छिपा है
एक "मैं",
जो बोलता नहीं — सिर्फ महसूस करता है।

जब मैं कविता लिखता हूँ,
तो कोई मुझे भीतर से झकझोरता है —
कहता है, "देख, यही तो तू है!"
बिना मुखौटे, बिना डर के,
एकदम नग्न —
पर सच्चा।

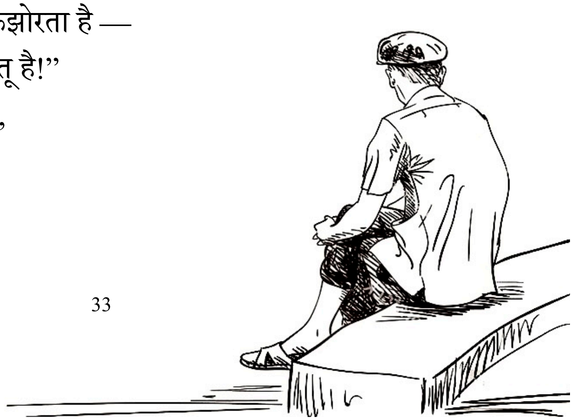

कविता मेरे सवाल हैं —
जिनके जवाब शायद कभी न मिलें।
पर पूछते रहना ज़रूरी है —
तभी तो ज़िंदा हूँ।

मैं कविता इसलिए लिखता हूँ —
क्योंकि बाहर की दुनिया ने बहुत नाम दिए,
पर भीतर की आवाज़ अब भी कहती है —
“तू अब भी अधूरा है।”

कविता मेरे लिए रास्ता है —
किसी मंज़िल तक नहीं,
बल्कि उस मोड़ तक
जहाँ मैं
खुद से मिल सकूँ।